Introduction

भूमिका

ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का प्रवर्तन बहुत पहले 'किशोरीलाल गोस्वामी' द्वारा हो चुका था, किन्तु उसका सम्यक् विकास प्रेमचन्दोत्तर युग में ही हुआ। पिछले युग के उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना ऐतिहासिक दृष्टि से कम की थी, जबकि उपदेश, शिक्षा एवम् मनोरंजन की दृष्टि से अधिक की थी, अतः उनमें ऐतिहासिकता का निर्वाह बहुत कम मिलता है, जबकि विवेच्यकाल में वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव, रामकुमार वर्मा, यशपाल, गोविन्दवल्लभ पन्त, डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी आदि ने इतिहास के ठोस आधार पर अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, कि अन्य परम्पराओं की तुलना में इस परम्परा में अपेक्षाकृत बहुत थोड़े कथाकारों के नाम आते हैं। कदाचित् इसका कारण यह है, कि इस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए इतिहास और संस्कृति का गंभीर अध्ययन अपेक्षित है, मात्र कल्पना के बल पर इस क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ा जा सकता, फिर भी इस युग में हिन्दी के जितने ऐतिहासिक उपन्यास प्रस्तुत हुए हैं, वे प्रायः प्रौढ़ एवम् उच्चकोटि के हैं, उनमें न केवल ऐतिहासिक घटनाओं का अपितु प्राचीन भारत की सभ्यता, संस्कृति, धर्म-सम्प्रदाय, रहन-सहन, वेश-भूषा, रीति-नीति आदि विभिन्न पक्षों का निदर्शन स्पष्ट रुप में हुआ है। अतः यह स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है, कि ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा वैविध्यमूलक रही है, और साथ ही, ऐतिहासिक सत्य की अभिव्यक्ति में युग सत्य और युग-चेतना के अंकन के फलस्वरुप वास्तव की विश्वसनीयता के साथ कल्पना के उपयोग से कलात्मकता भी अक्षुण्ण रही है।

रचनाकार भी सामान्य व्यक्ति की भाँति ही मानव समाज का अविभाज्य अंग होता है, बिना समाज रचनाकार भी कल्पना तक निरर्थक है। जिस समाज के समुदाय विशेष में

रहकर रचनाकार का जन्म होता है, जिन सम्भव सुविधाओं के सहारे वह पलता-बढ़ता है, हर पल वह उन्हीं सामाजिक उपलब्धियों को मानसिक रुप में ग्रहण करता है, और समाज का अभिन्न अंग बनकर आजीवन जीवित रहता है। रचनाकार अति संवेदनशील प्राणी होता है। उसकी सम्वेदना इतनी सबल और सशक्त होती है, कि वह समाज की सम्वेदनाओं को अपनी सम्वेदना समझ लेता है, और उसी ही नवीन रुपों में प्रकट करता है। जिस रचनाकार की रचनात्मक दृष्टि जितनी ही पैनी और गहन होती है, उसकी साहित्यिक यात्रा उतनी ही दूरगामी और दीर्घकालीन होती है। सम्पूर्ण सृष्टि की मूल आत्मा एक होती है, किन्तु वह प्रकट इतने अधिक रुपों में होती है, कि इन रुपों के माध्यम से मूल आत्मा को पहचानना कठिन-सा प्रतीत होता है। इसी सत्य के निकट रचनाकार होता है।

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी वहुमुखी सजम, समर्थ और सशक्त रचनाकार हैं। उन्होंने मानव समाज के अन्तर्विरोधों को सहा और समझा ही नहीं है, वरन् अपनी रचनाओं के द्वारा व्यक्त भी किया है। उनका यह व्यक्तिकरण कभी संलिष्ट रुप में हुआ तो कभी विश्लिष्ट रुप में। इस सम्बन्ध में स्वयं डॉ. त्रिपाठी का कथन है - "यों तो एक समस्या विशेष भी रचनाकार को रचनात्मक सृष्टि के लिए अनुप्रेरित करती है, किन्तु समस्या वैयक्तिक हो या निर्वैयक्तिक कभी नितांत अकेली नहीं होती, बल्कि ज्ञात-अज्ञात रुप में अनेक समस्याएँ उनसे जुड़ी होती हैं। हाँ, प्रमुख रुप से समस्या-विशेष इस लिए प्रतीत होती है, क्योंकि वह सर्वाधिक ध्यानाकर्षण में सफल होती है। रचनाकार जब किसी समस्या विशेष पर ध्यान केन्द्रित करता है, तो उससे सम्बन्धित अन्यान्य समस्याएँ भी अछूती नहीं रह पाती है। जिन्हें वैयक्तिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक आदि रुपों में माना जाता है।"

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी एक प्रतिभासम्पन्न कथाकार हैं। आपने ऐतिहासिक, सामाजिक उपन्यास ही नहीं लिखे, अपितु नाटक, कहानी, लेख और दृश्यचित्र भी सृजित किए हैं। डॉ. त्रिपाठी की दृश्यचित्र प्रधान परम्परागत रेखाचित्र प्रधान साहित्यिक रचनाओं से अलग

मानी गई हैं, क्योंकि रेखाचित्र मात्र सांकेतिक समझ होती है। जबकि दृश्यचित्र साकार रुप धारण करते हैं। कथाकार या रचनाकार की पकड़ सदैव संश्लिष्ट होती है, और इसी सुदृष्टि को डॉ. त्रिपाठी ने अपनी प्रत्येक रचना में व्यक्त किया है।

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी की प्रत्येक रचनाओं में हमें मानवतावादी दृष्टिकोण मुखरित होता हुआ नजर आता है। सामान्यतः एक रचनाकार की एक या दो शैलियाँ विशेष होती हैं। किन्तु डॉ. त्रिपाठी प्रत्येक रचनाशैली की दृष्टि से बिल्कुल अलग हैं। उनकी रचनाओं में कहीं आत्मविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है तो कहीं वर्णनात्मक शैली का, कहीं घटनाप्रधान शैली है, तो कहीं शैली में वर्णनात्मकता है। परन्तु सार रुप में आपकी रचना शैली की विशेषता 'रोचकता' है। कथाकार की स्वयं की भी यह मान्यता है कि रोचकता ही रचना का प्राणतत्व होती है, और इस तत्व विशेष का यथेष्ठ ध्यान रखा है, आपकी रचना में डॉ. त्रिपाठी ने। क्षमताओं और महत्वकांक्षाओं जैसे तथ्यों के दर्शन डॉ. त्रिपाठी की रचनाओं में हर पृष्ठ पर किए जा सकते हैं। वे स्वयं कहते हैं, कि "रचना में रचनाकार की जीवन दृष्टि ही तो प्रस्फुटित होती है, यह प्रस्फुटन जब पाठक को रोचक प्रतीत होने लगता है, तब पाठक रचना के अति निकट पहुँच जाता है, और मनोकांक्षा प्रकट करने के लिए आतुर हो उठता है, कि काश रचनाकार का साकार सान्निध्य हो पाता।"

मानव अन्तर्मुखी प्राणी है, मन की बातें मानना उसकी प्रकृति है, मन की गति असीमित होती है। मन में जब भी जो तरंग उठी उसी के प्रवाह में प्रवाहित मानव ने वैसी ही निर्माण-शक्ति का परिचय भी दिया है। जिस प्रकार मन विराम नहीं लेता, उसी प्रकार मानव की सृजन क्षमता भी विराम नहीं लेती। यूं तो समय असीम अदृश्य, अजन्मा और अजेय है, फिर भी मानव ने उसकी अपरिमित शक्ति और सीमा को स्वीकारते हुए समय को सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग और भूत, भविष्य, वर्तमान, दिन-रात, वर्ष, माह, दिन, पहर, घंटा, मिनट, सेकण्ड आदि सम्भागों में भी विभाजित करने की चेष्टा की है। मानव ही यह चेष्टा समय से होड़ लेती रहती है। मन की ही भॉति मानव-मस्तिष्क प्रधान प्राणी

समझा जाता है। चिन्तक और मनीषी तक मन और मस्तिष्क को एक ही सिक्के के दो रुप समझने का दावा करते हुए नजर आते हैं। मानसिक क्षमता के प्रति मानव अन्यान्य साधनों और उपायों के द्वारा अपनी गत्यात्मक उपलब्धियों को समाकलित और मूल्यांकित भी करता जा रहा है। समाकलन व मूल्यांकन की यही प्रवृत्ति मानव को साहित्य-सृष्टि के लिए सम्प्रेरित करती है। सम्प्रेरणा का यही रेखांकन साहित्य-सृष्टि का मूल रहस्य है।

सृष्टि-क्षमता का यह आकलन जब घनीभूत हो उठता है, तब वह शोधकार्य की परिसीमा में आवद्ध हो जाता है, और किसी एक रचनाकार और उसकी रचनाओं तक ही अपनी जिज्ञासु-प्रवृत्ति को वह सीमित कर लेता है। इसी अनुभूति के वशीभूत हो मैंने भी प्रख्यात रचनाकार 'डॉक्टर वाल्मीकि त्रिपाठी' और उनकी रचनाओं में ही अपने मन को रमाया। वैसे, तो किसी भी रचनाकार के अन्तर्जगत में प्रवेश पाना और जान पाना बड़ी टेढ़ी-खीर होती है, फिर भी उनकी रचनाओं के माध्यम से रचनाकार के अन्तर्बाह्य जीवन के दोनों पक्षों को एक हद तक तो समझा ही जा सकता है।

स्नातकोत्तर कक्षा में अध्ययन के दौरान से ही मैंने डॉ. त्रिपाठी की रचनाओं का नध्ययन प्रारंम्भ कर दिया था । और मन में एक सोच निश्चत कर ली, कि इनके उपन्यासों पर ही शोध-कार्य करुँगी । एम.ए. पूरा होने के पश्चात् अपनी इस शोध जिज्ञासा-भाव साकार रुप में देखने के लिए कई विषयों पर पर्याप्त विचार-विमर्श भी हुआ, किन्तु पढ़े हुए उपन्यास जिनका अमिट प्रभाव मेरे मन-मस्तिष्क में सुरक्षित था, शोध-विषय के लिए पर्याप्त समीचीन प्रतीत हुए, और मेरी सोच से अवगत होते ही शोध-निर्देशक समादरणीय डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी ने अपनी सहमति भी प्रदान कर दी, और मैंने अपना पंजीकरण उनके निर्देशन में करा लिया। प्रारम्भ में तो विषय रुचिकर लगा, किन्तु गहन अध्ययन के बाद एक क्षण ऐसा आया कि मुझे इस विषय की गरिमा ने चिंतित कर दिया, किन्तु शोध-निर्देशक महोदय की कृपा से मैं हतोत्साहित नहीं होने पाई और उन्होंने शोध-विषय - "हिन्दी का साठोत्तर कथा साहित्य और उसमें वाल्मीकि त्रिपाठी का प्रदान"- ही

सुनिश्चित नहीं किया, वरन् विषय को व्यववस्थित आकार देने के लिए एक गंभीर पृष्ठभूमि भी तैयार कराई।

मैंने अधिक से अधिक हिन्दी के साठोत्तरी उपन्यासकारों और उनके प्रमुख-प्रमुख उपन्यासों का अध्ययन एवं विवेचन भी इस शोध-प्रबंध में प्रस्तुत करने का एक छोटा-सा प्रयास किया है। यद्यपि वे विषय की गरिमा एवं विस्तार की दृष्टि से अपर्याप्त ही नहीं, अत्यल्प भी हैं। तथापि, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध औपन्यासिक दृष्टि से साहित्य का अध्ययन करनेवाले अनुसंधिकत्सुओं को कुछ नए दिशा-निर्देश दे सकेगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का किस सीमा तक ज्ञान के संवर्द्धन में योगदान होगा, यह तो विद्वानों के विचार का विषय है, किन्तु अपनी ओर से शोधार्थिनी केवल इतना ही निवेदन करने के कोशिश में है, कि यह शोध-विषय प्रस्तावित दिशा में सर्वथा नवीन प्रयास है।

✱ आभार ✱

मेरे शोध-निर्देशक महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के हिन्दी विभाग के वरिष्ठ विद्वान एवं प्रख्यात साहित्यकार 'डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी'जी हैं, जिनके प्रति आभार प्रकट करना असम्भव है, क्योंकि उन्होंने मेरा मार्ग-निर्देशन ही नहीं किया, बल्कि अनुमानित और अज्ञात अड़चनों को दूर करने में मेरी अकथनीय सहायता भी की है। यदि आपने मुझे अपनी चरण-रज न दी होती, तो मैं कदापि यह कार्य सम्पन्न नहीं कर पाती। शोध-काल से ही उन्होंने मेरे प्रति जिस अमीस स्नेह और गहन आत्मीयतापूर्ण वात्सल्य का परिचय दिया, उसी का यह प्रतिफल है। विषय के चयन, रुपरेखा के निर्माण, विषय के केन्द्र-बिन्दु, डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी से सम्पर्क स्थापित करने का सुझाव और समय-समय पर आकस्मिक समस्याओं के समाधान में उन्होंने जो व्यावहारिक दृष्टि प्रदान की है, उससे मात्र कृतज्ञता ज्ञापन द्वारा ऋण मुक्त होना मात्र औपचारिकता है। मेरा रोम-रोम उनके प्रति सदैव श्रद्धानत रहेगा।

परम आदरणीय 'प्रो. पारुकान्त देसाई ' (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग); कला संकाय, के प्रति मैं साग्रह अभिवादन सहित अपना धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ और यह अनुभव करती हूँ कि यदि प्रो. देसाई इस कालावधि में अध्यक्ष पद पर शोभायमान न होते तो संभव मेरा यह दुष्कर प्रयास सफल नहीं हो पाता। मैं हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान तथा कथा-साहित्य के अधिकारी विवेचक प्रो. पारुकान्त देसाई के प्रति अपना अनन्त आभार व्यक्त करती हूँ।

हिन्दी विभाग के अन्य वरिष्ठ गुरुजन डॉ. अक्षयकुमार गोस्वामी, डॉ. पी.एन. झा, डॉ. प्रेमलता बाफना, डॉ. अनुराधा दलाल, डॉ. इन्दु शुक्ला, डॉ. शैलजा भारद्वाज आदि के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मेरे प्रति स्नातक और स्नातकोत्तर काल से ही असीम कृपा रखी। इन वरिष्ठ विद्वानों के प्रति मैं किन शब्दों में आभार प्रकट करूँ। यह मेरी समझ से परे है। पर मैं इनकी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कृपा-दृष्टि एवं शुभकामनाओं का वरद्हस्त है, और मैं इनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ। इनका आर्शिमय प्रोत्साहन ही मेरी अमूल्य निधि है।

इस सम्बन्ध में मैं अपने परिवारजनों के प्रति भी आभारी हूँ, विशेषकर मेरे पिता श्री रामधनी राम, जिन्होंने मेरी सामयिक-असामयिक आर्थिक सहायता ही नहीं की, बल्कि इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त स्वच्छन्दता भी प्रदान की है। मैं अपनी माँ श्रीमती बसन्तीदेवी की हृदय से आभारी हूँ, जिनके आशिर्वाद से आज मैं यहाँ तक पहुँच पाई हूँ। मेरे धैर्य और साहस ने जिन विपरीतताओं और असुविधाओं के क्षणों में मुझ अडिग बनाए रखा है, वह तो मेरे जीवन अक्षय रत्न हैं ही।

एक बार पुनः मैं डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी के श्री चरणों में उनके अहैतुक और अकूत आशीर्वाद के लिए शिरसः नमन् करती हूँ।

आशा कनौजिया